प्रवाह

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक
स्थापना वर्ष : 1948

जलवायु परिवर्तन एक भयावह समस्या है, इसका समाधान करने की आवश्यकता है। यह हमारी प्राथमिकता में होना चाहिए।
-बिल गेट्स

अमेरिकी उद्यमी

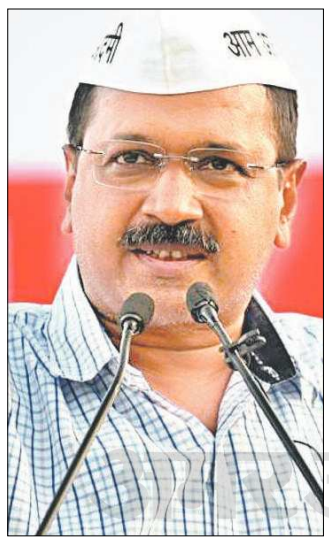

महिला सुरक्षा के मसले को व्यापक रूप में देखने की जरूरत है। इससे जुड़ा सबसे व्यावहारिक सवाल तो यही है कि देर शाम कार्यस्थल से लौटने वाली महिलाओं के लिए मेट्रो स्टेशन या बस स्टॉप से सुरक्षित घर पहुंचने की क्या व्यवस्था होगी?

मुफ्त का सफर

आम आदमी पार्टी की सरकार ने मेट्रो ट्रेन और दिल्ली ट्रांसपोर्ट कॉरपोरेशन (डीटीसी) की बसों में महिलाओं के लिए मुफ्त सफर की व्यवस्था करने का जो एलान किया है, उसके पीछे सुरक्षा को कारण बताया गया है, लेकिन इसमें छिपी राजनीतिक मंशा को समझना भी मुश्किल नहीं है। दिल्ली की मौजूदा विधानसभा का कार्यकाल अगले वर्ष फरवरी में खत्म होगा, ऐसे में यह स्वाभाविक ही पूछा जा रहा है कि केजरीवाल सरकार को चुनाव से कुछ महीने पहले ही अचानक महिला सुरक्षा की याद कैसे आ गई? वैसे सार्वजनिक परिवहन मुफ्त करने का विचार नया नहीं है; अनेक यूरोपीय देशों में सभी यात्रियों को यह सुविधा प्राप्त है, ताकि निजी वाहनों का इस्तेमाल कम हो, जिससे वायु प्रदूषण पर अंकुश लग सके। मगर देश की राजधानी में महिलाओं की सुरक्षा एक बड़ा मसला है और दिसंबर, 2012 में निर्भया के साथ एक बस में हुई बर्बरता के बाद इस मुद्दे की ओर देश भर का न केवल ध्यान गया, बल्कि बलात्कार के मामलों से निपटने के लिए एक नया सख्त कानून तक अस्तित्व में आ गया। इसके बावजूद महिला सुरक्षा को लेकर स्थिति में खास सुधार नहीं आया है। दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल का तर्क है कि मेट्रो ट्रेन और डीटीसी की बसों जैसे सार्वजनिक परिवहन का सफर महिलाओं के लिए सुरक्षित है, जबकि महिला सुरक्षा से जुड़ा यह सिर्फ एक पहलू है। महिला सुरक्षा के मसले को व्यापक रूप में देखने की जरूरत है। इससे जुड़ा सबसे व्यावहारिक सवाल तो यही है कि देर शाम कार्यस्थल से लौटने वाली महिलाओं के लिए मेट्रो स्टेशन या बस स्टॉप से सुरक्षित घर पहुंचने की क्या व्यवस्था होगी? उन्होंने सार्वजनिक स्थलों और बसों में सीसीटीवी कैमरे लगाए जाने का वादा किया था, लेकिन हकीकत यह है कि अभी कुछ सौ सीसीटीवी कैमरे ही लग पाए हैं, जबकि प्रस्ताव दो लाख 80 हजार कैमरे लगाने का है! केजरीवाल का कहना है कि सार्वजनिक परिवहन में महिलाओं के मुफ्त सफर से संबंधित योजना को लागू करने में केंद्र की मंजूरी की जरूरत नहीं होगी, जबकि डीएमआरएसी में दिल्ली सरकार और केंद्र सरकार की पचास-पचास फीसदी की हिस्सेदारी है? यही नहीं कुछ महीने पहले मेट्रो का किराया बढ़ाए जाने पर दोनों के बीच तकरार हो चुकी है और इस बात की क्या गारंटी है कि इसमें कोई अड़चन न आए? ऐसे में यह क्यों न माना जाए कि यह एक चुनावी कदम है।

वर्षों की रणनीति से बना चक्रव्यूह

भाजपा की जीत कोई आसमान से नहीं टपकी है। पूरा संघ परिवार वर्षों से इसके लिए जमीन पर जुटा हुआ था। शायद ही कोई जनांदोलन हो, जिससे स्वयंसेवक जुड़े न रहे हों, दूसरी ओर कांग्रेस लगातार बिखरती गई।

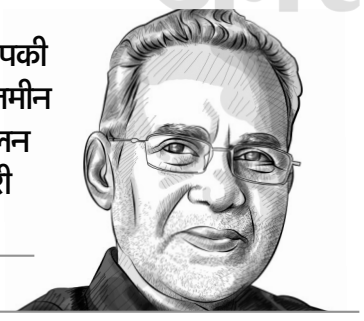

प्रदीप कुमार, वरिष्ठ पत्रकार

लोकसभा चुनाव में भाजपा की दूसरी महाविजय के बाद कुछ राजनीतिक विश्लेषकों ने जवाहर लाल नेहरू और नरेंद्र मोदी में साम्य ढूंढने की कोशिश की है। साम्य मुख्य रूप से लोकप्रियता तक सीमित है। आज मोदी की सभाओं में जुटने वाली भीड़ का मुकाबला कोई विपक्षी नेता नहीं कर सकता। यहां एक घटना का जिक्र जरूरी है। नवंबर 1949 के पहले हफ्ते में मुंबई के शिवाजी पार्क में सर संघचालक माधवराव सदाशिव गोलवलकर ने सभा की थी, जिसमें प्रेस रिपोर्टों के मुताबिक एक लाख श्रोता थे। एक हफ्ते के बाद नेहरू ने उसी पार्क में छह लाख लोगों को संबोधित कर 'हिंदू उग्रवाद' पर चोट की, सेक्युलर राजनीति की अनिवार्यता को रेखांकित किया और भारतीय जनसंघ को आरएसएस की 'नाजायज औलाद' बताया।

अब मोदी सूद सहित अच्छा रिटर्न दे रहे हैं। नेहरू के आख्यान पर मर्मांतक प्रहार किए जा रहे हैं। नेहरू जिन मूल्यों के लिए लड़ते रहे, उनकी रक्षा करने वाले शिथिल हैं। खुद कांग्रेस वैचारिक स्तर पर बिखराव से ग्रस्त है। यह नियति थी या अनिवार्य परिणति? यह सही है कि महात्मा गांधी ने सर्वाधिक प्रिय शिष्य नेहरू को अपना राजनीतिक वारिस घोषित किया था और लौह पुरुष सरदार पटेल ने इसे स्वीकार भी किया था। लेकिन कल्पना करें,1950 में पटेल के बजाय नेहरू का निधन हो गया होता और पटेल प्रधानमंत्री बन जाते। जिस कांग्रेस वर्किंग कमेटी में नेहरू विरोधियों की खासी संख्या थी और जिससे बात मनवाने के लिए उन्हें इस्तीफे तक की धमकी देनी पड़ी, उसकी पौ बारह हो जाती। ऐसे में कांग्रेस और भारतीय राजनीति की दिशा की कल्पना आसानी से की जा सकती है।

नेहरू का आख्यान निजी भी था और करोड़ों भारतीयों का भी। लेकिन उसके समानांतर एक और आख्यान भी चल रहा था। वरिष्ठ प्रचारक एकनाथ रानाडे के नेतृत्व में विवेकानंद शिला स्मारक निर्माण से पहले कांग्रेसी नेताओं के नेतृत्व में सोमनाथ मंदिर का निर्माण हो चुका था। संघ परिवार के नेता तो अब अनुसूचित जाति वालों के पैर धो रहे हैं, नेहरू के ही समय में राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद वाराणसी में पंडितों के पैर धोने जा रहे थे। गोवध पर संपूर्ण रोक के लिए 1965 में संसद पर हिंसक प्रदर्शन से पहले ठीक यही मांग कांग्रेस के अंदर से भी उठ रही थी।

भाजपा नेहरू की आर्थिक नीतियों की जिस तरह आलोचना करती रही है, बिल्कुल उसी तरह मोरारजी देसाई और एसके पाटिल जैसे लोग करते रहते थे। समाजवाद में आस्था, वैज्ञानिक चिंतन, सेक्युलर राजनीति - इन सभी सिद्धांतों का क्षरण नेहरू के बाद स्वाभाविक था। स्वतंत्रता संग्राम में विकसित कांग्रेस एक बड़ी छतरी थी, जिसके नीचे परस्परविरोधी नीतियों और सिद्धांतों का अस्तित्व संभव था। काल के थपेड़ों ने इस छतरी को छेद डाला तो बिखराव होना ही था। आजादी के बाद गांव-गांव तक फैले करोड़ों कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के सामने कोई स्थायी मिशन नहीं रह गया। दूसरी ओर संघ आसेतु हिमालय विस्तार की नीति पर चल रहा था। शायद ही ऐसा कोई जनांदोलन हो, जिससे स्वयंसेवक न जुड़े हों। केरल में नंबूदरीपाद की कम्युनिस्ट सरकार के खिलाफ आंदोलन कांग्रेस और चर्च ने शुरू किया था, लेकिन उसमें संघ भी शामिल हो गया। गुजरात के नवनिर्माण आंदोलन, जेपी की 'संपूर्ण क्रांति' आपातकाल विरोधी संघर्ष और अन्ना हजारे की मुहिम सुप्रशिक्षित संघ कार्यकर्ताओं के बिना क्या रूप लेती, यह विचार भी जरूरी है।

भाजपा की जीत कोई आसमान से नहीं टपकी है। पूरा संघ परिवार वर्षों से इसके लिए धरातल पर जुटा हुआ था। मोरारजी की सरकार में शामिल सोशलिस्टों ने दोहरी सदस्यता का प्रश्न उठाया। अर्थात, वाजपेयी और आडवाणी जैसे नेता संघ की सदस्यता के साथ मंत्री नहीं रह सकते। सरकार और जनता पार्टी के टूटने की वह शुरुआत थी। तब सर संघचालक बालासाहब देवरस ने वाराणसी में कार्यकर्ताओं को आश्वस्त किया था- धैर्य धरो, आखिर सत्ता पर अपना ही कब्जा होना है। सर संघचालक सुदर्शन ने जनवरी, 2006 में कहा था, '2011 भारत के संक्रमण काल का अंत होगा। हमें नेतृत्व के लिए अपने को तैयार करना है।' वह घड़ी आई 2014 में। पूर्वोत्तर से कन्याकुमारी तक फैले संघ के दर्जनों अनुषांगिक संगठनों के करोड़ों प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं पर नजर डालें। किशोरावस्था में कुछ समय के लिए ही सही, शाखा में जाने वाले युवक या सरस्वती शिशु मंदिरों के छात्र किस प्रकार के आईपीएस, आईएएस, आईएफएस, जज या कुछ और बनते होंगे, यह भी सोचें।

करीब 18 करोड़ मुस्लिम आबादी के प्रति संघ का नजरिया भी गौरतलब है। गोलवलकर, दीनदयाल उपाध्याय, बलराज मधोक, पीएन ओक, सीताराम गोयल और अन्य के लेखन को याद करें। संघ ने उस चिंतन का सार्वजनिक रूप से त्याग किए बिना आगे बढ़ने के प्रमाण दिए हैं। राष्ट्रीय मुस्लिम मंच के गठन से शुरुआत हुई। अब तो संघ मदरसा शिक्षा के क्षेत्र में भी आ चुका है। इनका पैटर्न सरस्वती शिशु मंदिरों से बुनियादी तौर पर मिलता-जुलता होगा। यहां से निकलने वाले विद्यार्थियों का सामाजिक-राष्ट्रीय दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न प्रकार का होगा।

भाजपा को प्राप्त जनादेश का क्या यह अर्थ भी हो सकता है कि उसे संघ की अब तक सभी घोषित-अघोषित नीतियों पर अमल की भी अनुमति है? शायद ऐसा नहीं है और अनेक शंकाएं स्वाभाविक रूप से मौजूद हैं, इसीलिए प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने से पहले मोदी ने 'सबका विश्वास' जीतने की बात कही। आत्ममंथन के परिणामस्वरूप, वक्त के दबाव या रणनीति के तहत अनेक राजनीतिक दलों और संगठनों ने समय-समय पर अपनी नीतियों और नीति निर्देशक सिद्धांतों में बदलाव किए हैं। काल के इस सार्वभौमिक सिद्धांत से भाजपा अछूती कैसे रह सकती है? तर्क की खातिर कहा जा सकता है कि 130 करोड़ की अति भिन्न आबादी में महात्मा गांधी के हत्यारे को पूजने वाले लोग भी होंगे और मुसलमानों व ईसाइयों से नफरत करने वाले भी। लेकिन घृणा से प्रेरित इस तरह के तत्व सत्ता के गलियारों में सक्रिय हों, बेलगाम होकर सांविधानिक मूल्यों पर चोट करते हुए भारतीय दंड विधान का मखौल उड़ाते रहें और उन्हें 'फ्रिंज' कहकर न सिर्फ सहन कर लिया जाए, बल्कि उनके समर्थन में आवाजें उठने लगें, तो खतरे की घंटियां कानों में अवश्य बजती रहेंगी।

अंतर्ध्वनि

>> सुंदरलाल बहुगुणा

जल, जंगल, जमीन मनुष्य के लिए जीवन के आधार हैं

मैं प्रकृति की गोद में पला और बड़ा हुआ, प्रकृति से प्रेम होने के कारण पेड़ कटते देखकर रहा नहीं गया। वर्ष 1973 से 1981 तक चिपको आंदोलन चलाया, इस आंदोलन में महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महिलाओं ने पेड़ों से चिपककर पेड़ों को बचाने की मुहिम चलाई। आठ वर्षों तक महिलाओं ने आंदोलन के लिए लंबी लड़ाई लड़ी। चिपको आंदोलन प्रकृति को बचाने के लिए किया गया प्रयास था। यह आंदोलन मेरे परिवार तक ही सीमित नहीं रहा है, गढवाल, कुमायूं, उत्तरकाशी में तो महिलाएं दिलोजान से इसमें जुड़ी थी। पारिस्थिति की मनुष्य और प्रकृति के संबंधों का शास्त्र है। मनुष्य और प्रकृति का संबंध मां-बेटे जैसा है, लेकिन जब हम आर्थिक लाभ के लिए जंगल का दोहन करते हैं, तो थोड़े समय के लिए जरूर लाभ दिखता है, पर हमेशा के लिए विनाश होता है। आज भी पृथ्वी प्राकृतिक संसाधनों पर ही टिकी हुई है। जल, जंगल, जमीन मनुष्य के लिए जीवन के आधार हैं, इसकी तुलना पूंजी के साथ करना बेमानी है। हमें अपने अस्तित्व को बचाने के लिए सतत अर्थतंत्र वाले पेड़ों को बचाने की जरूरत है। विकास के नाम पर हो रहे नए प्रयोग से आम इंसान बेहद परेशान है। पश्चिम इस समस्या को भुगत रहा है। अब वह इस मानव विरोधी विकास को हम सब पर थोप रहा है या हम उनकी राह पर चल पड़े हैं, इस बात को हमें भलीभांति जान लेना चाहिए। वर्तमान दौर में भूमंडलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण के नाम पर जो विकास की आंधी चली है, यह मनुष्य को खतरनाक मोड़ पर ले जा रही है। आज का विकास प्रकृति के शोषण पर टिका है जिसमें गरीब, आदिवासी को प्राकृतिक संसाधनों से बेदखल किए जाने का षड्यंत्र रचा जा रहा है। भोगवादी सभ्यता ने हम सभी को बाजार में खड़ा कर दिया है।

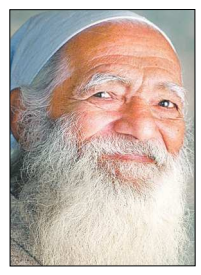

-चिपको आंदोलन के प्रणेता।

मंजिलें और भी हैं

>> कनिका शर्मा

इस तरह बनाया गांव की ओर लौटने का रास्ता

नौकरी की खातिर उत्तराखंड की युवा आबादी अपनी जन्मभूमि से दूर हो रही है। आए दिन यहां के खाली होते गांवों की खबरें चर्चा में रहती हैं। लेकिन मैंने दिल्ली, गुरुग्राम जैसे महानगर की सुख-सुविधाएं सिर्फ इसलिए छोड़ दी ताकि खुद को सुकून देने के साथ गांव के किसानों के लिए कुछ कर सकूं। मैं उत्तराखंड के मुक्तेश्वर की रहने वाली हूं। मैंने अपनी स्कूली शिक्षा उत्तराखंड के नैनीताल और रानीखेत से पूरी की। इसके बाद एमबीए किया और करीब चार साल तक गुरुग्राम में एक मल्टी नेशनल कंपनी में काम किया। वहीं मेरी उच्च शिक्षित बहन भी एक मल्टीनेशनल कंपनी के साथ काम कर रही थी। नौकरी के दौरान मौका मिलते ही मैं अपने माता-पिता से मिलने नैनीताल पहुंच जाती थी। इस दौरान मैंने अनुभव किया कि मेरी जिंदगी तो बड़े आराम से गुजार रही है, लेकिन रोज की भागदौड़ में वह सुकून नहीं मिल पाता जो पहाड़ की वादियों में था। कुछ महीनों की कशमकश के बाद मैंने घर लौटने व जैविक खेती के साथ किसानों को जागरूक करने का फैसला किया। नैनीताल वापस आने के बाद मैं और मेरी बहन अपने पिता के साथ मुक्तेश्वर आई। यहां कुछ दिन बिताए और यहां के हालात, खेती और किसानों की स्थिति का जायजा लिया। इस दौरान मैंने देखा कि यहां की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित हैं, लेकिन स्थानीय लोग कृषि उत्पादन बढ़ाने को लेकर जागरूक नहीं हैं और न ही वह जैविक खेती के बारे में कुछ जानते हैं। जबकि दूसरी ओर शहरों में जैविक उत्पादों की काफी मांग है। इसी विचार के साथ जीरो बजट खेती करने का प्रशिक्षण लेने मैं देश के कई राज्यों में गई, विशेषज्ञों से बातचीत की। इस काम में परिवार का समर्थन मिला, तो वर्ष 2014 में हमने मुक्तेश्वर में 25 एकड़ जमीन पर खेती शुरू कर दी। शुरुआत में मुझे कई तरह की परेशानियों से जूझना पड़ा, क्योंकि यहां के स्थानीय लोगों के लिए हमारा विचार बिलकुल नया था, जिस पर उन्हें विश्वास करने में कुछ समय लगना स्वभाविक था। मैंने किसानों को जैविक खेती के तरीके बताए और उन्होंने थोड़े समय बाद इसे अपनाया। हलांकि लाभ मिलने के बाद अन्य किसान भी इस तरफ आकर्षित हुए। मैंने इन किसानों के साथ अपनी उपज को देश के महानगरों में उपलब्ध कराया, जिससे हमें स्थानीय मंडियों की अपेक्षा ज्यादा फायदा हुआ। अब यहां के दर्जनों किसान जैविक खेती कर रहे हैं। शहरों में रहने के दौरान मैंने महसूस किया कि वहां रहने वाले लोग कुछ समय प्रकृति के करीब भी रहना चाहते हैं। तब मैंने सोचा कि गांव में आकर खेती करने के लिए शायद ही कोई तैयार होगा, लेकिन जब हम उनसे यह कहेंगे कि आप गांव में आकर कुछ दिन छुट्टियां मनाइए, तो हर कोई तैयार हो जाएगा। इस उद्देश्य से हमने 'दयो - द ऑर्गेनिक विलेज रिसोर्ट' की स्थापना की। यहां आने वाले पर्यटक फॉर्म में जाकर अपनी पसंद की सब्जियों को तोड़ सकते हैं और रिसॉर्ट के शेफ को देकर मनपसंद खाना बनवा सकते हैं। मेरी कोशिश है कि उत्तराखंड के अन्य गांवों में भी किसानों को जागरूक किया जाए। साथ ही अब कृषि उत्पादों को बेचने के लिए मैं सप्लाई चेन बनाने की योजना पर कार्य कर रही हूं। मुझे लगता है कि, यदि उत्तराखंड से पलायन पर रोक लगाना है, तो नई तकनीकों और विचारों के साथ फिर से अपने गांवों की ओर लौटना होगा। आज समय आ गया है कि युवाओं को शहरों की भीड़ से निकलकर अपने गांव को संभालना होगा, क्योंकि कुछ अलग करना है, तो भीड़ से हटकर चलने की आवश्यकता है।

यदि पलायन पर रोक लगाना है, तो नई तकनीकों और विचारों के साथ गांवों की ओर लौटना होगा।

हवा-मिट्टी-पानी पर कब होंगे चुनाव

पश्चिम के विकास मॉडल की तर्ज पर हम वह सब कुछ करने पर उतारू हैं, जो पश्चिमी देशों ने विकास के नाम पर किया। पर उन देशों की तरह पर्यावरण के प्रति सजगता और संवेदनशीलता हम नहीं सीख सके। हमें अपना विकास मॉडल चुनना होगा।

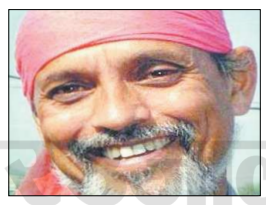

अनिल प्रकाश जोशी

पर्यावरण के प्रति हम अब भी गंभीर नहीं हुए, इसका पता इसी बात से चलता है कि अभी हाल ही में ऑस्ट्रेलिया में हुआ चुनाव हवा, मिट्टी, पानी जैसे मुद्दों पर केंद्रित था। लेकिन अपने यहां हुए चुनाव में पर्यावरण हाशिये पर रहा। ऑस्ट्रेलिया के चुनाव में पर्यावरण के मुद्दे की प्रमुखता का का कारण यह था कि शताब्दी का सबसे बड़ा सूखा इस बार पड़ा था। वहां के मुरे डार्लिंग नदी तंत्र में दस लाख मछलियां सूखे के कारण मर गईं। वहीं दूसरी तरफ क्वींसलैंड में पांच लाख मवेशी बाढ़ में बह गए और जंगल की आग ने वर्षा वनों का बड़ा नुकसान किया। दावानल ने करीब एक लाख 90 हजार हेक्टेयर में फैले वनों को लील डाला। इसलिए वहां के राजनीतिक दलों के घोषणा पत्रों में पर्यावरण संरक्षण जैसे मुद्दे शामिल थे। लेबर पार्टी ने अपने चुनाव प्रचार में वर्ष 2030 तक कार्बन उत्सर्जन को 45 फीसदी तक घटाने का दावा किया है। ऑस्ट्रेलियन ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन के द्वारा किए गए सर्वेक्षण में पाया गया कि वहां चुनाव में पर्यावरण ही सबसे प्रमुख मुद्दा रहा। ऑस्ट्रेलिया ही नहीं, हाल ही में ब्रिटिश पार्लियामेंट में भी वायु प्रदूषण को लेकर जमकर खींचतान हुई है और आपातकालीन स्थिति की तर्ज पर उपायों पर पहल की बात की गई।

चीन में बढ़ते वायु प्रदूषण को लेकर नए सिरे से कमर कसी गई और पिछली ग्लोबल एयर रपट की तुलना में आज बेहतर स्थितियां हैं। चीन दुनिया का वह देश है, जिसकी अर्थव्यवस्था तो तेजी से बढ़ी ही, वह वायु प्रदूषण को लेकर भी गंभीर रहा और उससे मुक्त होने के उपाय भी खोजे। आज बीजिंग व शंघाई काफी हद तक वायु प्रदूषण मुक्त हो चुके हैं।

लेकिन अपने देश में परिस्थितियां पूरी तरह विपरीत हैं। हवा, मिट्टी, पानी, जंगल के हालात न तो समाज को विचलित करते हैं, न ही सरकार को। और यही कारण है इस देश में पर्यावरण बड़ा मुद्दा नहीं बन सका, बल्कि ग्लोबल एयर रिपोर्ट को अमान्य बताकर कहा गया कि ऐसी रिपोर्ट में कोई दम नहीं है। जाहिर है, जब तक पर्यावरण एक बड़ा राजनीतिक मुद्दा नहीं बनेगा, तब तक राजनेता इसे प्राथमिकता नहीं देंगे। और जब तक यह चुनावी मुद्दा नहीं होगा, तब तक हम इसे राष्ट्रीय मुद्दा नहीं बना पाएंगे। पर्यावरण के राष्ट्रीय मुद्दा बनने पर संसद इससे मुंह नहीं फेर पाएगा। ऐसा पूरी दुनिया में हो रहा है। यही कारण है कि पर्यावरण संयुक्त राष्ट्र का एक बड़ा मृद्दा बन चुका है।

संयुक्त राष्ट्र ने इस बार का पर्यावरण दिवस को वायु प्रदूषण से जोड़ा है। यह सही भी है, क्योंकि अभी हाल ही में ग्लोबल एयर रिपोर्ट ने विश्व में बढ़ते वायु प्रदूषण पर चिंता जताई है। इस रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की 91 फीसदी आबादी किसी न किसी रूप में वायु प्रदूषण की चपेट में है।

इतना ही नहीं, हर दिन 800 लोग इसके प्रकोप से पीड़ित हैं। अकेले वर्ष 2017 में 30 लाख लोगों ने वायु प्रदूषण के कारण अपनी जान गंवाई, जिनमें भारत और चीन अग्रणी रहे। इसकी चपेट में बच्चे व बुजुर्ग ज्यादा आए हैं। अपने देश में गुरुग्राम, गाजियाबाद, फरीदाबाद, नोएडा, पटना, लखनऊ, दिल्ली, जोधपुर, मुजफ्फरपुर, वाराणसी, मुरादाबाद व आगरा सबसे घातक शहरों में दर्ज हुए हैं।

अजीब बात है कि इसके बावजूद किसी के कानों पर जूं नहीं रेंगती है। असल में पर्यावरण पर अर्थव्यवस्था भारी पड़ रही है। पश्चिम के विकास मॉडल की तर्ज पर हम वह सब कुछ करने पर उतारू हैं, जो पश्चिमी देशों ने विकास के नाम पर किया। लेकिन उन देशों की तरह पर्यावरण के प्रति सजगता और संवेदनशीलता हम नहीं सीख सके। हमें अपना विकास मॉडल चुनना होगा, ताकि हम पर्यावरण संरक्षण के प्रहरी भी बनें और प्रकृति के प्रहार से बच भी सकें।

खुली खिड़की

विश्व में कार्बन उत्सर्जन

दुनिया में जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन है। दुनिया के लगभग सभी देश वैश्विक प्रदूषण के उच्च स्तर के लिए जिम्मेदार हैं।

एक रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया के प्रदूषित देशों में भारत तीसरे स्थान पर है जो विश्व का 7 प्रतिशत कार्बन उत्सर्जित करता है।

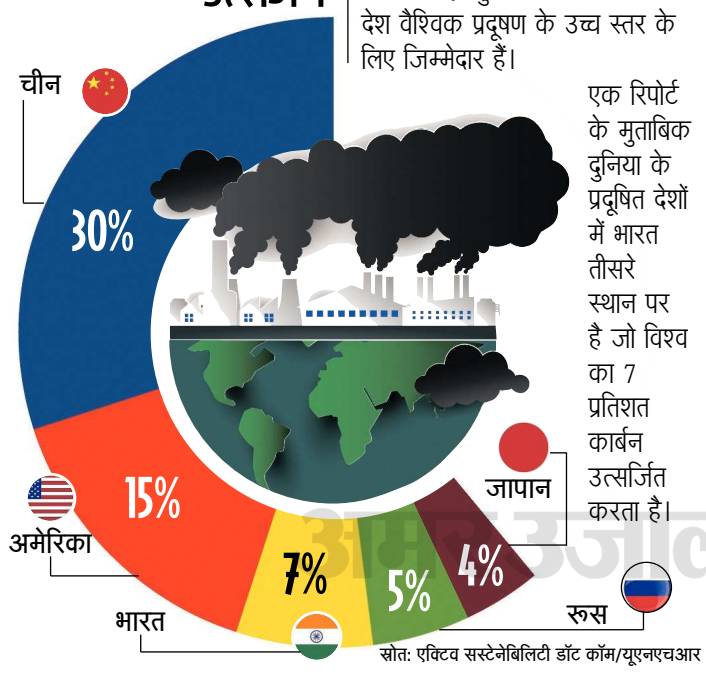

स्रोत: एक्टिव सस्टेनेबिलिटी डॉट कॉम/यूएनएचआर

वैज्ञानिक की ईश्वरनिष्ठा

सत्संग

विश्व के अग्रणी वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन को वर्ष 1921 में भौतिकी के नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। वह जीवन के अंतिम समय तक नई-नई खोजों में लगे ही रहे, ईश्वर के प्रति भी उनकी अटूट निष्ठा बनी रही। एक बार आइंस्टीन बर्लिन हवाई अड्डे से विमान में सवार हुए। वायुयान जब ऊपर पहुंचा, तो उन्होंने अपनी जेब से एक माला निकाल ली। उनकी बगली की सीट पर बैठे एक युवक ने यह देखा, तो वह आश्चर्य में पड़ गया। उसने धीरे से उनसे कहा, आज हमारे युग में अनेक वैज्ञानिक शोध हो रहे हैं। आइंस्टीन जैसे वैज्ञानिकों का युग है और आप जैसा युवक माला जपकर दकियानूसी होने का परिचय दे रहा है। उस युवक ने अपना कार्ड निकालकर उन्हें दिखाया और बोला, मैं अंधविश्वास और ईश्वर के अस्तित्व के विरुद्ध अभियान में लगा हूं। आप भी इसमें सहयोग करें। आइंस्टीन उस युवक की बातें सुनकर मुस्कराए और अपना कार्ड निकालकर उसे दिया। कार्ड पर जैसे ही उसने अलबर्ट आइंस्टीन शब्द पढ़ा, तो हक्का-बक्का रह गया। वह तुरंत श्रद्धापूर्वक उनके चरणों में झुक गया। वर्ष 1930 में जब गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर आइंस्टीन से मुलाकात करने बर्लिन गए, तो उस भेंट में दोनों महापुरुषों ने ईश्वर और धर्म के संबंध में चर्चा की थी। आइंस्टीन ने कहा था, मैं ईश्वर के अस्तित्व की अनुभूति कर चुका हूं। अतः गर्व से अपने को धार्मिक कहता हूं।

-संकलित

हरियाली और रास्ता

राणा, मां और क्रिकेट का जुनून

एक बेटे की कहानी, जिसने मां की भावनाओं का ख्याल रखकर मां का दिल जीत लिया।

राणा क्रिकेट का बहुत बड़ा फैन था। बचपन में ही उसके पिता की एक कार दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। मां ने ही उसका पालन-पोषण किया था। वह हमेशा राणा को पढ़ाई में मन लगाने को कहती, पर वह पढ़ते वक्त भी क्रिकेट के बारे में ही सोचता रहता। राणा के दिमाग से क्रिकेट का भूत उतारने के लिए उसकी मां ने उसके सारे खेल बंद करवा दिए। उसको घर में बंद कर के रखा, लेकिन उस पर फर्क न पड़ा। वह कभी बेलन को अपना बैट बना लेता, तो कभी किताबों को। राणा की मां को कई लोगों ने समझाया कि उसको क्रिकेट खेलने दें, वह बहुत अच्छा कर सकता है। लेकिन उन्हें यह बात जरा भी समझ नहीं आई। राणा धीरे-धीरे बड़ा होता गया। वह मां को दुखी नहीं देखना चाहता था। उसने तय किया कि वह मां के सामने क्रिकेट नहीं खेलेगा, न उन्हें यह पता चलने देगा कि वह अब भी क्रिकेट को पसंद करता है। राणा चोरी-छिपे क्रिकेट खेलता गया।

एक दिन राणा की मुलाकात एक मशहूर टीम के कोच से हुई। वह कई दिनों से राणा का खेल देख रहे थे। उन्होंने राणा को अपनी टीम से खेलने की पेशकश की। राणा को पता था कि अगर वह इस टीम में खेलेगा, तो उसकी मां को पता चल जाएगा और उन्हें बहुत बुरा लगेगा। इसलिए उसने तय किया कि वह अब क्रिकेट नहीं खेलेगा। उसने निर्णय तो ले लिया, पर वह दिन पर दिन उदास होता गया। उसकी मां ने उससे कई बार जानने की कोशिश की कि वह इतना उदास क्यों है। पर उसने मां को इस डर से कुछ नहीं बताया कि मां को बुरा लगेगा।

एक दिन उसकी मां क्रिकेट किट और चमचमाते जूते के साथ घर लौटी। राणा यह देखकर दंग रह गया। दोनों मां बेटे एक दूसरे से लिपटकर रोने लगे। अगले दिन राणा पहली बार मां के साथ अपने करियर का पहला मैच खेलने गया।

झूठ का रास्ता आसान होता है, पर सच नामुमकिन को भी मुमकिन कर सकता है।